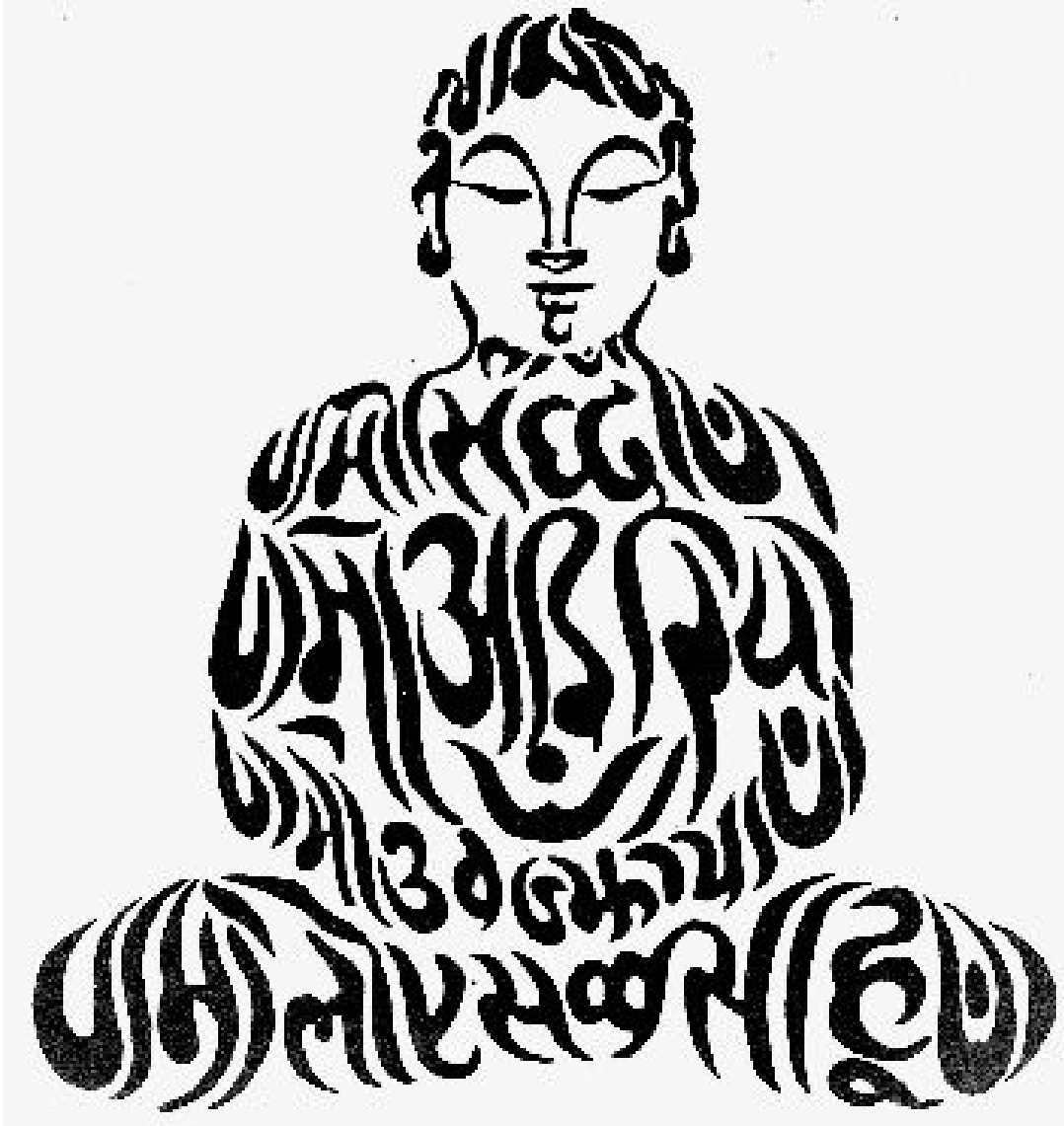


योगसार



- आचार्य योगींदुदेव

!! नमः श्रीसर्वज्ञवीतरागाय !!

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥१॥

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥२॥

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥

॥ श्रीपरमगुरुवे नमः, परम्पराचार्यगुरुवे नमः ॥

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनः
प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री योगसार नामधेयं, अस्य
मूलग्रन्थकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तर ग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः
प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्य योगीन्दुदेव विरचितं

॥ श्रोतारः सावधानतया शृणवन्तु ॥

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

योगीन्दु-देव

अपभ्रंश के महाकवि अध्यात्मवेत्ता मुनिराज योगीन्दु के जीवन के बारे में विशेष जानकारी अभी तक उपलब्ध नहीं है । उनके नाम का भी कई तरह से उल्लेख मिलता है, जैसे योगीन्दु, योगीन्द्र । पर अपभ्रंश के जोड़न्दु का संस्कृतानुवाद योगीन्दु ठीक बैठता है, योगीन्द्र नहीं । योगीन्दु के समय के बारे में भी विभिन्न मत हैं । इनका काल छठवीं शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी तक माना जाता है । आपके ग्रन्थों पर कुन्दकुन्द-आचार्य का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है । योगीन्दु-देव ने कुन्दकुन्द-आचार्य से बहुत कुछ लिया है । पूज्यपाद-आचार्य के समाधिशतक और योगीन्दु-देव के परमात्मप्रकाश में भी घनिष्ठ समानता दिखाई देती है । उनके द्वारा बनाये गये परमात्मप्रकाश (परमप्पयासु) और योगसार (जोगसारु) ही उनकी कीर्ति के अक्षय भंडार हैं । इन ग्रन्थों में उन्होंने अध्यात्म के गूढ़ तत्त्वों को सहज और सरल लोक-भाषा में जनता के समक्ष रखा है ।

Index

प्रस्तुत ग्रन्थ - योगसार

रचेता - आचार्य योगीन्दु देव

पद्यानुवाद - डा. हुकमचंद भारिल्ल

**णिम्मल-झाण-परिट्ठिया, कम्म-कलंक डहेवि
अप्पा लद्धउ जेण परु, ते परमप्प णवेवि ॥१॥**

**सब कर्मल का नाश कर अर प्राप्त कर निज-आत्मा
जो लीन निर्मल ध्यान में नम कर निकल परमात्मा ॥**

जिसने निर्मल ध्यान में पूर्णतः स्थित होकर कर्मरूपी कलंक को जला दिया है और अपने आत्मा को उपलब्ध कर लिया है, उस परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ ।

**घाड़-चउक्कहँ किउ विलउ, णंत-चउक्कु पदिट्ठु
तह जिणइंदहँ पय णविवि, अक्खमि कव्वु सु-इट्ठु ॥२॥**

**सब नाश कर घनघाति अरि अरिहंत पद को पा लिया
कर नमन उन जिनदेव को यह काव्यपथ अपना लिया ॥**

जिन्होंने चार घातिया कर्मों का नाश करके अनन्त चतुष्टय को प्रकट किया है, उन जिनेन्द्र देव के चरणों को नमस्कार करके मैं यहाँ अत्यन्त इष्ट काव्य को कहता हूँ ।

**संसारहँ भयभीयहँ, मोक्खहँ लालसियाहँ
अप्पा-संबोहण-कयइ, दोहा एक्कमणाहँ ॥३॥**

**है मोक्ष की अभिलाष अर भयभीत हैं संसार से
है समर्पित यह देशना उन भव्य जीवों के लिए ॥**

जो जीव संसार से भयभीत हैं और मोक्ष के लिए लालायित हैं, उनके लिए और अपने आप को भी संबोधित करने के लिए मैंने एकाग्रचित्त से इन दोहों की रचना की है ।

**कालु अणाइ अणाइ जिउ, भव-सायरु जि अणंतु
मिच्छा-दंसण-मोहियउ, णवि सुह दुक्ख जि पत्तु ॥४॥**

अनन्त है संसार-सागर जीव काल अनादि हैं

पर सुख नहीं, बस दुःख पाया मोह-मोहित जीव ने ॥

काल अनादि-अनन्त है, जीव अनादि-अनन्त है और यह संसारसागर भी अनादि-अनन्त है । यहाँ मिथ्यादर्शन से मोहित जीव ने कभी भी सुख नहीं प्राप्त किया, अपितु दुःख ही प्राप्त किया ।

**जइ बीहउ चउ-गइ-गमण, तो पर-भाव चएहि
अप्पा झायहि णिम्मलउ, जिम सिव-सुक्ख लहेहि ॥५॥**

**भयभीत है यदि चतुर्गति से त्याग दे परभाव को
परमात्मा का ध्यान कर तो परमसुख को प्राप्त हो ॥**

हे जीव ! यदि तू चतुर्गति के भ्रमण से भयभीत है, तो परभाव का त्याग कर और निर्मल आत्मा का ध्यान कर, ताकि तू मोक्ष-सुख को प्राप्त कर सके ।

**ति-पयारो अप्पा मुणहि, परु अंतरु बहिरप्पु
पर झायहि अंतर-सहिउ, बाहिरु चयहि णिभंतु ॥६॥**

**बहिरात्मापन त्याग जो बन जाय अन्तर-आत्मा
ध्यावे सदा परमात्मा बन जाय वह परमात्मा ॥**

आत्मा तीन प्रकार का है - परमात्मा, अन्तरात्मा और बहिरात्मा । इनमें से अन्तरात्मा होकर परमात्मा का ध्यान करो और भ्रान्ति-रहित होकर बहिरात्मा का त्याग कर दो ।

**मिच्छा-दंसण-मोहियउ, परु अप्पा ण मुणेइ
सो बहिरप्पा जिण-भणिउ, पुण संसार भमेइ ॥७॥**

**मिथ्यात्वमोहित जीव जो वह स्व-पर को नहीं जानता
संसार-सागर में भ्रमे दृग्मूढ़ वह बहिरात्मा ॥**

जो जीव मिथ्यादर्शन से मोहित है और परमात्मा (अथवा स्व और पर) को नहीं पहिचानता है, उसे जिनेन्द्र-देव ने बहिरात्मा कहा है । वह पुनः पुनः संसार में परिभ्रमण करता है ।

**जो परियाणइ अप्पु परु, जो परभाव चएइ
सो पंडिउ अप्पा मुणहु, सो संसारु मुएइ ॥८॥**

जो त्यागता परभाव को अर स्व-पर को पहिचानता

हैं वही पण्डित आत्मज्ञानी स्व-पर को जो जानता ॥

जो जीव स्व-पर को पहचानकर, परभावों का त्याग कर देता है, उसे पंडित-आत्मा (अन्तरात्मा) समझो । वह संसार को छोड़ देता है ।

**णिम्मलु णिक्कलु सुद्धु जिणु, विण्हु बुद्धु सिवु संतु
सो परमप्पा जिण-भणित्ठ, एहत्त जाणि णिभंतु ॥९॥**

जो शुद्ध शिव जिन बुद्ध विष्णु निकल निर्मल शान्त है

बस है वही परमात्मा जिनवर-कथन निर्भान्त है ॥

जो निर्मल है, निष्कल है, शुद्ध है, जिन है, विष्णु है, बुद्ध है, शिव है और शान्त है उसे जिनेन्द्र-देव ने परमात्मा कहा है, ऐसा निःसन्देह जानो ।

**देहादिउ जे पर कहिय, ते अप्पाणु मुणेइ
सो बहिरप्पा जिण-भणित्ठ, पुणु संसारु भमेइ ॥१०॥**

जिनवर कहे देहादि पर जो उन्हें ही निज मानता

संसार-सागर में भ्रमे वह आत्मा बहिरात्मा ॥

जो जीव, देह आदि पदार्थों को, जो कि पर कहे गये हैं, आत्मा समझता है, उसे जिनेन्द्र-देव ने बहिरात्मा कहा है । वह संसार में पुनः पुनः परिभ्रमण करता रहता है ।

**देहादिउ जे पर कहिय, ते अप्पाणु ण होहि
इत्त जाणेविणु जीव तुहुँ, अप्पा अप्प मुणेहि ॥११॥**

देहादि पर जिनवर कहें ना हो सकें वे आत्मा

यह जानकर तू मान ले निज आत्मा को आत्मा ॥

हे जीव ! ये जो देह आदि पदार्थ हैं वे पर कहे गये हैं; वे आत्मा नहीं हो सकते, यह जानकर तू आत्मा को ही आत्मा मान ।

**अप्पा अप्पत्त जइ मुणहि, तो णिव्वाणु लहेहि
पर अप्पा जइ मुणहि तुहुँ, तो संसारु भमेहि ॥१२॥**

तू पायगा निर्वाण माने आत्मा को आत्मा

पर भवभ्रमण हो यदी जाने देह को ही आतमा ॥

हे जीव ! यदि तू आत्मा को ही आत्मा समझेगा तो निर्वाण प्राप्त करेगा और यदि पर को आत्मा मानेगा तो संसार में परिभ्रमण करेगा ।

**इच्छा-रहियउ तव करहि, अप्पा अप्पु मुणेहि
तो लहु पावहि परम-गई, फुडु संसारु ण एहि ॥१३॥**

**आतमा को जानकर इच्छारहित यदि तप करे
तो परमगति को प्राप्त हो संसार में घूमे नहीं ॥**

हे भाई ! यदि तू इच्छा-रहित होकर तप करे और आत्मा को ही आत्मा समझे, तो शीघ्र ही परमगति को प्राप्त कर ले और निश्चित रूप से पुनः संसार में न आवे ।

**परिणामे बंधु जि कहिउ, मोक्ख वि तह जि वियाणि
इउ जाणेविणु जीव तुहुँ, तहभाव हु परियाणि ॥१४॥**

**परिणाम से ही बंध है अर मोक्ष भी परिणाम से
यह जानकर हे भव्यजन ! परिणाम को पहिचानिये ॥**

हे जीव ! परिणाम से ही बंध कहा है और परिणाम से ही मोक्ष कहा है, अतः तू इस बात को अच्छी तरह जानकर अपने भावों को पहिचान ।

**अह पुणु अप्पा णवि मुणहि, पुण्णु जि करहि असेस
तो वि ण पावहि सिद्ध-सुहु, पुणु संसारु भमेस ॥१५॥**

**निज आतमा जाने नहीं अर पुण्य ही करता रहे
तो सिद्धसुख पावे नहीं संसार में फिरता रहे ॥**

हे जीव ! यदि तू आत्मा को नहीं जानेगा और केवल पुण्य ही पुण्य करता रहेगा तो भी सिद्ध-सुख को नहीं पा सकेगा, अपितु पुनः पुनः संसार में ही भ्रमण करेगा ।

**परिणामे बंधु जि कहिउ, मोक्ख वि तह जि वियाणि
इउ जाणेविणु जीव तुहुँ, तहभाव हु परियाणि ॥१६॥**

निज आतमा को जानना ही एक मुक्तिमार्ग है

कोइ अन्य कारण है नहीं हे योगिजन! पहिचान लो ॥

हे योगी ! एक आत्म-दर्शन ही मोक्ष का कारण है, अन्य कुछ भी नहीं - ऐसा तू निश्चित रूप से जान ।

**मग्गण-गुणठाणइ कहिय, विवहारेण वि दिट्ठि
णिच्छय-णइँ अप्पा मुणहि, जिम पावहु परमेट्ठि
॥ १७ ॥**

**मार्गणा गुणथान का सब कथन है व्यवहार से
यदि चाहते परमेष्ठिपद तो आत्मा को जान लो ॥**

हे जीव ! मार्गणास्थान और गुणस्थान का कथन तो व्यवहार-दृष्टि से किया गया है, अतः तू निश्चयनय से कथित आत्मा को पहिचान, जिससे परमेष्ठी पद प्राप्त हो ।

**गिहि-वावार-परिट्ठिया, हेयाहेउ मुणंति
अणुदिणु झायहिं देउ जिणु, लहु णिव्वाणु लहंति ॥ १८ ॥**

**घर में रहें जो किन्तु हेयाहेय को पहिचानते
वे शीघ्र पावें मुक्तिपद, जिनदेव को जो ध्यावते ॥**

जो जीव गृह-व्यापार में स्थित होते हुए भी हेयाहेय (हेय-उपादेय) को पहिचानते हैं और प्रतिदिन जिनदेव का ध्यान करते हैं, वे शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं ।

**जिणु सुमिरहु जिणु चिंतवहु, जिणु झायहु सुणेण
सो झायंतहँ परम-पउ, लब्भइ एक्क-खणेण ॥ १९ ॥**

**जिणु सुमिरहु जिणु चिंतवहु, जिणु झायहु सुणेण
सो झायंतहँ परम-पउ, लब्भइ एक्क-खणेण ॥**

हे भाई ! शुद्ध मन से जिनदेव का स्मरण करो, जिनदेव का ही चिन्तन करो और जिनदेव का ही ध्यान करो, ताकि एक क्षण में परमपद की प्राप्ति हो ।

**सुद्धप्पा अरु जिणवरहँ, भेउ म किं पि वियाणि
मोक्खहँ कारण जोइया, णिच्छइँ एउ वियाणि ॥ २० ॥**

मोक्षमग में योगिजन यह बात निश्चय जानिये
जिनदेव अर शुद्धात्मा में भेद कुछ भी है नहीं ॥

हे योगी ! शुद्धात्मा और जिनवर में कुछ भी अन्तर मत समझो और ये ही मोक्ष के कारण हैं -
ऐसा निश्चित रूप से समझो ।

जो जिणु सो अप्पा मुणहु, इहु सिद्धंतहँ सारु
इउ जाणेविणु जोइयहो, अण्णु म करहु वियप्पु ॥२१॥

सिद्धान्त का यह सार माया छोड़ योगी जान लो
जिनदेव अर शुद्धात्मा में कोई अन्तर है नहीं ॥

हे योगी ! सम्पूर्ण सिद्धान्तों का सार यह है कि जो जिन है वही आत्मा है, अतः तुम इसे जानो
और सर्व मायाचार को छोड़ दो ।

जो परमप्पा सो जि हउँ, जो हउँ सो परमप्पु
इउ जाणेविणु जोइया, अण्णु म करहु वियप्पु ॥२२॥

है आत्मा परमात्मा परमात्मा ही आत्मा
हे योगिजन ! यह जानकर कोई विकल्प करो नहीं ॥

हे योगी ! जो परमात्मा है वही मैं हूँ और जो मैं हूँ वही परमात्मा है - ऐसा जानो और अन्य कुछ भी
विकल्प मत करो, बस ।

सुद्ध-पएसहँ पूरियउ, लोयायास-पमाणु
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु, पावहु लहु णिव्वाणु ॥२३॥

परिमाण लोकाकाश के जिसके प्रदेश असंख्य हैं
बस उसे जाने आत्मा निर्वाण पावे शीघ्र ही ॥

हे योगी ! शुद्ध-प्रदेशों से परिपूर्ण लोकाकाश-प्रमाण आत्मा की नित्य श्रद्धा करो, ताकि शीघ्र
निर्वाण प्राप्त हो ।

णिच्छइँ लोय-पमाणु मुणि, ववहारें सुसरीरु
एहउ अप्प-सहाउ मुणि, लहु पावहि भव-तीरु ॥२४॥

व्यवहार देहप्रमाण अर परमार्थ लोकप्रमाण है
जो जानते इस भाँति वे निर्वाण पावें शीघ्र ही ॥

हे योगी ! इस आत्मा का स्वभाव निश्चय से लोकाकाश-प्रमाण है और व्यवहार से स्व-शरीर-प्रमाण है । तुम इसको जानो, ताकि शीघ्र संसार-सागर का किनारा प्राप्त हो ।

चउरासी लकखहिँ फिरिउ, कालु अणाइ अणंतु
पर सम्मत्तु ण लद्धु जिय, एहउ जाणि णिभंतु ॥२५॥

योनि लाख चुरासि में बीता अनन्ता काल है
पाया नहीं सम्यक्त्व फिर भी बात यह निर्भान्त है ॥

अहो ! इस जीव ने अनादि-अनन्त काल से चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण किया है और सब कुछ प्राप्त किया है, परन्तु निश्चित समझो कि कभी सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं किया ।

सुद्ध सचेयणु बुद्धु जिणु, केवल-णाण-सहाउ
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु, जइ चाहहु सिव-लाहु ॥२६॥

यदि चाहते हो मुक्त होना चेतनामय शुद्ध जिन
अर बुद्ध केवलज्ञानमय निज आत्मा को जान लो ॥

हे योगी ! यह आत्मा शुद्ध है, सचेतन है, बुद्ध है, जिन है और केवलज्ञान स्वभावी है । यदि तुम मोक्ष चाहते हो तो इसकी नित्य श्रद्धा करो ।

जाम ण भावहि जीव तुहुँ, णिम्मल अप्प-सहाउ
ताम ण लब्भइ सिव-गमणु, जहिँ भावइ तहिँ जाउ ॥२७॥

जबतक न भावे जीव निर्मल आत्मा की भावना
तबतक न पावे मुक्ति यह लख करो वह जो भावना ॥

हे जीव ! जब तक तू निर्मल आत्म-स्वभाव की भावना नहीं करेगा, तब तक मोक्ष को नहीं प्राप्त कर सकता । जहाँ इच्छा हो, वहाँ जा ।

जो तइलोयहँ झेउ जिणु, सो अप्पा णिरु वुत्तु
णिच्छय-णइँ एमइ भणिउ, एहउ जाणि णिभंतु ॥२८॥

त्रैलोक्य के जो ध्येय वे जिनदेव ही हैं आत्मा
परमार्थ का यह कथन है निर्भान्त यह तुम जान लो ॥

हे भाई ! निश्चयनय ऐसा कहता है कि जो तीन लोक का ध्येय है, जिन है, वही शुद्ध आत्मा है ।
तू उसे निःसन्देह जान ! उसमें भ्रान्ति मत कर ।

**वय-तव-संजम-मूलगुण, मूढहँ मोकख ण वुत्तु
जाव ण जाणइ इक्क पर, सुद्धउ भाउ पवित्तु ॥२९॥**

जबतक न जाने जीव परमपवित्र केवल आत्मा
तबतक न व्रत तप शील संयम मुक्ति के कारण कहे ॥

जब तक यह जीव एक परम-शुद्ध पवित्र भाव को नहीं जानता, तब तक मूढ़ है और ऐसे मूढ़ जीव
के व्रत, तप, संयम और मूलगुणों को मोक्ष का कारण नहीं कहा गया है ।

**जइ णिम्मल अप्पा मुणइ, वय-संजम-संजुत्तु
तो लहु पावइ सिद्धि-सुह, इउ जिणणाहँ उत्तु ॥३०॥**

जिनदेव का है कथन यह व्रत शील से संयुक्त हो
जो आत्मा को जानता वह सिद्ध-सुख को प्राप्त हो ॥

जिनेन्द्र देव ने कहा है कि यदि कोई जीव निर्मल आत्मा को पहिचानता है और व्रत-संयम से युक्त
होता है तो वह शीघ्र ही सिद्ध-सुख को प्राप्त करता है ।

**वउ तउ संजमु सीलु जिय, ए सव्वइँ अकयत्थु
जाव ण जाणइ इक्क परु, सुद्धउ भाउ पवित्तु ॥३१॥**

जबतक न जाने जीव परम-पवित्र केवल आत्मा
तबतक सभी व्रत शील संयम कार्यकारी हों नहीं ॥

जब तक यह जीव एक परम-शुद्ध पवित्र भाव को नहीं जानता, तब तक व्रत, तप, संयम और
शील - ये कुछ भी कार्यकारी नहीं होते ।

**पुण्णिं पावइ सग्ग जिउ, पावएँ णरय-णिवासु
बे छंडिवि अप्पा मुणइ, तो लब्भइ सिववासु ॥३२॥**

पुण्य से हो स्वर्ग नर्क निवास होवे पाप से
पर मुक्ति-रमणी प्राप्त होती आत्मा के ध्यान से ॥

पुण्य से जीव स्वर्ग पाता है और पाप से नरक; परन्तु जो पाप एवं पुण्य दोनों को छोड़कर आत्मा को जानता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है ।

**वउ तउ संजमु सीलु जिय, इउ सव्वइँ ववहारु
मोक्खहँ कारणु एक्कु मुणि, जो तइलोयहँ सारु ॥३३॥**

व्रत शील संयम तप सभी हैं मुक्तिमग व्यवहार से
त्रैलोक्य में जो सार है वह आत्मा परमार्थ से ॥

हे जीव ! व्रत, तप, संयम एवं शील तो व्यवहार से मोक्ष का कारण है । निश्चय से तो जो तीन लोक का सार है - ऐसा एक आत्मा ही मोक्ष का कारण है ।

**अप्पा अप्पइँ जो मुणइ, जो परभाउ चएइ
सो पावइ सिवपुरि-गमणु, जिणवरु एम भणेइ ॥३४॥**

परभाव को परित्याग कर अपनत्व आत्म में करे
जिनदेव ने ऐसा कहा शिवपुर गमन वह नर करे ॥

जिनेन्द्र देव कहते हैं कि जो जीव आत्मा से आत्मा को जानता है और परभाव को छोड़ देता है, वही शिवपुरी को जाता है ।

**छह दव्वइँ जे जिण-कहिय, णव पयत्थ जे तत्त
विवहारेण य उत्तिया, ते जाणियहि पयत्त ॥३५॥**

व्यवहार से जिनदेव ने छह द्रव्य तत्त्वारथ कहे
हे भव्यजन ! तुम विधीपूर्वक उन्हें भी पहिचान लो ॥

हे भाई ! जिनेन्द्र-देव ने जो छह द्रव्य, सात तत्त्व और नौ पदार्थ कहे हैं, वे सब व्यवहारनय से कहे हैं । तुम उनको प्रयत्न करके जानो ।

**सव्व अचेयण जाणि जिय, एक्क सचेयणु सारु
जो जाणेविणु परम-मुणि, लहु पावइ भवपारु ॥३६॥**

हैं आत्मा बस एक चेतन आत्मा ही सार है
बस और सब हैं अचेतन यह जान मुनिजन शिव लहैं ॥

जगत के सर्व पदार्थ अचेतन हैं । मात्र एक जीव ही सचेतन है और वही सार अर्थात् श्रेष्ठ है । उसे जानकर परम-मुनि शीघ्र संसार-सागर से पार हो जाते हैं ।

**जइ णिम्मलु अप्पा मुणहि, छंडिवि सहु ववहारु
जिण-सामिउ एमइ भणइ, लहु पावइ भवपारु ॥३७॥**

जिनदेव ने ऐसा कहा निज आत्मा को जान लो
यदि छोड़कर व्यवहार सब तो शीघ्र ही भवपार हो ॥

हे योगी ! यदि तू सर्व व्यवहार को छोड़कर एक निर्मल आत्मा को ही जाने तो शीघ्र संसार से पार हो जाए, ऐसा जिनस्वामी कहते हैं ।

**जीवाजीवहँ भेउ, जो जाणइ तिं जाणियउ
मोक्खहँ कारण एउ, भणइ जोइ जोइहिँ भणिउँ ॥३८॥**

जो जीव और अजीव के गुणभेद को पहिचानता
है वही ज्ञानी जीव वह ही मोक्ष का कारण कहा ॥

हे योगी ! जो जीव और अजीव के भेद को जानता है, वही वास्तव में सब कुछ जानता है । तथा जीव और अजीव के भेदज्ञान को ही योगियों ने मोक्ष का कारण कहा है ।

**केवल-णाण-सहाउ, सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ
जइ चाहहि सिव-लाहु, भणइ जोइ जोइहिँ भणिउँ ॥३९॥**

यदि चाहते हो मोक्षसुख तो योगियों का कथन यह
है जीव! केवलज्ञानमय निज आत्मा को जान लो ॥

हे जीव ! यदि तू मोक्ष प्राप्त करना चाहता है तो केवलज्ञान-स्वभावी आत्मा को जान, ऐसा योगियों ने कहा है ।

**को सुसमाहि करउ को अंचउ, छोपु-अछोपु करिवि को वंचउ
हल सहि कलहु केण समाणउ, जहिँ कहिँ जोवउ तहिँ अप्पाणउ ॥४०॥**
सुसमाधि अर्चन मित्रता अर कलह एवं वंचना

हम करें किसके साथ किसकी हैं सभी जब आत्मा ॥

अहो ! कौन समाधि करे? कौन पूजन करे? कौन छूआछूत करके अपने आप को ठगे? कौन किससे मैत्री करे? कौन किससे कलह करे? जहाँ देखो, वहाँ आत्मा ही है ।

**ताम कुतित्थिँ परिभमइ, धुत्तिम ताम करेइ
गुरुहु पसाएँ जाम णवि, अप्पा-देउ मुणेइ ॥४१॥**

**गुरुकृपा से जबतक कि आत्मदेव को नहीं जानता
तबतक भ्रमे कुत्तीर्थ में अर ना तजे जन धूर्तता ॥**

यह जीव तभी तक कुत्तीर्थों में भ्रमण करता है, धूर्तता करता है, जब तक कि गुरु के प्रसाद से अपने आत्मदेव को नहीं जानता है ।

**तित्थिँ देवलि देउ णवि, इम सुइकेवलि-वुत्तु
देहा-देवलि देउ जिणु, एहउ जाणि णिरुत्तु ॥४२॥**

**श्रुतकेवली ने यह कहा ना देव मन्दिर तीर्थ में
बस देह-देवल में रहे जिनदेव निश्चय जानिये ॥**

श्रुतकेवलियों ने कहा है कि देव तीर्थों और मन्दिरों में नहीं है, अपितु देव तो देहरूपी देवालय में ही रहता है, ऐसा निःसन्देह जानो ।

**देहा-देवलि देउ जिणु, जणु देवलिहिँ णिएइ
हासउ महु पडिहाइ इहु, सिद्धे भिक्ख भमेइ ॥४३॥**

**जिनदेव तनमन्दिर रहें जन मन्दिरों में खोजते
हँसी आती है कि मानो सिद्ध भोजन खोजते ॥**

अहो ! जिनदेव तो इस देहरूपी देवालय में रहते हैं, परन्तु लोग उसे मन्दिरों में देखते हैं, खोजते हैं । मुझे यह देखकर बड़ी हँसी आती है कि मानो सिद्ध, भिक्षा-हेतु भ्रमण करते हैं ।

**मूढा देवलि देउ णवि, णवि सिलि लिप्पइ चित्ति
देहा-देवलि देउ जिणु, सो बुज्झहि समचित्ति ॥४४॥**

देव देवल में नहीं रे मूढ! ना चित्राम में

वे देह-देवल में रहें सम चित्त से यह जान ले ॥

हे मूढ़ ! देव मन्दिर में नहीं है । किसी मूर्ति, लेप या चित्र में भी देव नहीं है । देव तो इस देहरूपी देवालय में है । उसे तू समभाव से जान ।

तित्थइ देउलि देउ जिणु, सव्वु वि कोइ भणेइ
देहा-देउलि जो मुणइ, सो बुहु को वि हवेइ ॥४५॥

सारा जगत यह कहे श्री जिनदेव देवल में रहें
पर विरल ज्ञानी जन कहें कि देह-देवल में रहें ॥

'देव तीर्थों और मन्दिरों में हैं', ऐसा सब कहते हैं, परन्तु ऐसा ज्ञानी कोई विरला ही होता है जो मानता है कि देव तो इस देहरूपी देवालय में ही है ।

जइ जर-मरण-करालियउ, तो जिय धम्म करेहि
धम्म-रसायणु पियहि तुहुँ, जिम अजरामर होहि ॥४६॥

यदि जरा भी भय है तुझे इस जरा एवं मरण से
तो धर्मरस का पान कर हो जाय अजरा-अमर तू ॥

हे जीव ! यदि तू जरा-मरण से भयभीत है तो धर्म कर, धर्म-रसायन का पान कर; ताकि तू अजर-अमर हो सके ।

धम्मु ण पढियइँ होइ, धम्मु ण पोत्था-पिच्छियइँ
धम्मु ण मढिय-पएसि, धम्मु ण मत्था-लुंचियइँ ॥४७॥

पोथी पढ़े से धर्म ना ना धर्म मठ के वास से
ना धर्म मस्तक लुंच से ना धर्म पीछी ग्रहण से ॥

पढ़ने से धर्म नहीं होता, पुस्तक व पिच्छी से भी धर्म नहीं होता, मठ में रहने से भी धर्म नहीं होता, और केशलोंच करने से भी धर्म नहीं होता ।

राय-रोस बे परिहरिवि, जो अप्पाणि वसेइ
सो धम्मु वि जिण-उत्तियउ, जो पंचम-गइ णेइ ॥४८॥

परिहार कर रुष-राग आतम में बसे जो आतमा

बस पायगा पंचम गति वह आत्मा धर्मात्मा ॥

जो जीव राग और द्वेष - इन दोनों को छोड़कर आत्मा में वास करता है, उसे ही जिनेन्द्र देव ने धर्म कहा है। वह धर्म, जीव को, पंचम गति (मोक्ष) में ले जाता है।

**आउ गलइ णवि मणु गलइ, णवि आसा हु गलेइ
मोहु फुरइ ण वि अप्पहिउ, इम संसार भमेइ ॥४९॥**

**आयु गले मन ना गले ना गले आशा जीव की
मोह स्फुरे हित ना स्फुरे यह दुर्गति इस जीव की ॥**

अहो ! आयु गल रही है, पर मन नहीं गल रहा है, न ही आशा गल रही है। मोह तो स्फुरित हो रहा है, परन्तु आत्महित का स्फुरण नहीं हो रहा है। यही कारण है कि यह जीव संसार में भ्रमण कर रहा है।

**जेहउ मणु विसयहँ रमइ, तिमु जइ अप्प मुणेइ
जोइउ भणइ हो जोइयहु, लहु णिव्वाणु लहेइ ॥५०॥**

**ज्यों मन रमे विषयानि में यदि आत्मा में त्यों रमे
योगी कहें हे योगिजन! तो शीघ्र जावे मोक्ष में ॥**

हे योगियो ! यदि यह मन जिस तरह विषयों में रमण करता है, उस तरह आत्मा को जानने में लगे - आत्मा में रमण करे तो शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त करे, ऐसा योगी कहते हैं।

**जेहउ जज्जरु णरय-घरु, तेहउ बुज्झि सरीरु
अप्पा भावहि णिम्मलउ, लहु पावहि भवतीरु ॥५१॥**

**‘जरजरित है नरक सम यह देह’ - ऐसा जानकर
यदि करो आत्म भावना तो शीघ्र ही भव पार हो ॥**

हे योगी ! तू इस शरीर को नरकगृह के समान जर्जर (पुराना, व्यर्थ, बुरा) समझ, और एक निर्मल आत्मा की ही भावना कर, ताकि तू शीघ्र निर्वाण प्राप्त हो।

**धंधइ पडियउ सयल जगि, णवि अप्पा हु मुणंति
तहिँ कारणि ए जीव फुडु, ण हु णिव्वाणु लहंति ॥५२॥**

धंधे पड़ा सारा जगत निज आत्मा जाने नहीं
बस इसलिए ही जीव यह निर्वाण को पाता नहीं॥

अहो, संसार में सब लोग अपने-अपने धंधे में फँसे हुए हैं और आत्मा को नहीं पहिचानते हैं। यही कारण है कि वे निर्वाण को नहीं प्राप्त करते, यह स्पष्ट है।

**सत्थ पढंतहँ ते वि जड, अप्पा जे ण मुणंति
तहिँ कारणि ए जीव फुडु, ण हु णिव्वाणु लहंति ॥५३॥**

शास्त्र पढ़ता जीव जड़ पर आत्मा जाने नहीं
बस इसलिए ही जीव यह निर्वाण को पाता नहीं॥

जो जीव शास्त्रों को पढ़ते हुए भी आत्मा को नहीं जानते, वे भी जड़ ही हैं और इसी कारण से वे भी निर्वाण को नहीं प्राप्त करते हैं, यह स्पष्ट है।

**मणु-इंदिहि वि छोडियइ, बुहु पुच्छियइ ण कोइ
रायहँ पसरु णिवारियइ, सहज उपज्जइ सोइ ॥५४॥**

परतंत्रता मन-इन्द्रियों की जाय फिर क्या पूछना
रुक जाय राग-द्वेष तो हो उदित आत्म भावना॥

यदि कोई ज्ञानी जीव मन और इन्द्रियों से छुटकारा प्राप्त कर ले, तो उसे किसी से कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं है। वह राग के प्रसार को रोक देता है और उसे सहज ही आत्म-भाव प्रकट हो जाता है।

**पुग्गलु अण्णु जि अण्णु जिउ, अण्णु वि सहु ववहारु
चयहि वि पुग्गलु गहहि जिउ, लहु पावहि भवपारु ॥५५॥**

जीव पुद्गल भिन्न हैं अर भिन्न सब व्यवहार है
यदि तजे पुद्गल गहे आत्म सहज ही भवपार है॥

पुद्गल अलग है और जीव अलग है अन्य सब व्यवहार भी जीव से अलग है, हे जीव ! पुद्गल को छोड़ो और जीव को ग्रहण करो, ताकि तुम शीघ्र ही संसार से पार होओ।

जे णवि मण्णहिँ जीव फुडु, जे णवि जीउ मुणंति

ते जिण-णाहहँ उत्तिया, णउ संसार मुचंति ॥५६॥

**ना जानते-पहिचानते निज आत्मा गहराई से
जिनवर कहें संसार-सागर पार वे होते नहीं॥**

जो लोग जीव को नहीं जानते हैं और उसकी श्रद्धा नहीं करते हैं, वे कभी भी संसार से मुक्त नहीं होते, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है ।

**रयण दीउ दिणयर दहिउ, दुद्धु घीव पाहाणु
सुण्णउ रुउ फलिहउ अगिणि, णव दिट्ठंता जाणु ॥५७॥**

**रतन दीपक सूर्य घी दधि दूध पत्थर अर दहन
सुवर्ण रूपा स्फटिक मणि से जानिये निज आत्मन्॥**

जीव को समझने के लिए इन ९ दृष्टान्तों को अच्छी तरह समझो - १. रत्न, २. दीप, ३. सूर्य, ४. दही-दूध-घी (अथवा दही-दूध में घी), ५. पाषाण, ६. सोना, ७. चाँदी, ८. स्फटिक मणि और ९. अग्नि ।

**देहादिउ जो परु मुणइ, जेहउ सुण्णु अयासु
सो लहु पावइ बंभु परु, केवलु करइ पयासु ॥५८॥**

**शून्य नभ सम भिन्न जाने देह को जो आत्मा
सर्वज्ञता को प्राप्त हो अर शीघ्र पावे आत्मा॥**

जो जीव शून्य आकाश की भाँति देहादि को भी पर मानता है, वह शीघ्र परब्रह्म को प्राप्त करता है और केवलज्ञान का प्रकाश करता है ।

**जेहउ सुद्ध अयासु जिय, तेहउ अप्पा वुत्तु
आयासु वि जडु जाणि जिय, अप्पा चेयणुवंतु ॥५९॥**

**आकाश सम ही शुद्ध है निज आत्मा परमात्मा
आकाश है जड़ किन्तु चेतन तत्त्व तेरा आत्मा॥**

हे जीव ! जिनेन्द्र देव ने कहा है कि जैसा आकाश शुद्ध है, वैसा ही यह आत्मा भी शुद्ध है । उसमें भी आकाश तो जड़ है, परन्तु आत्मा चेतन है ।

**णासग्गिं अब्भितरहं, जे जोवहिं असरीरु
बाहुडि जम्मि ण संभवहिं, पिवहिं ण जणणी-खीरु ॥६०॥**

**नासाग्र दृष्टिवंत हो देखें अदेही जीव को
वे जनम धारण ना करें ना पियें जननी-क्षीर को॥**

जो जीव नासाग्र दृष्टि से अपने अन्तर में अशरीरी आत्मा को देखते हैं, वे इस संसार में पुनः लज्जाजनक जन्म धारण नहीं करते, माँ का दूध नहीं पीते ।

**असरीरु वि सुसरीरु मुणि, इहु सरीरु जडु जाणि
मिच्छा-मोहु परिच्चयहि, मुत्ति णियं वि ण माणि ॥६१॥**

**अशरीर को सुशरीर अर इस देह को जड़ जान लो
सब छोड़ मिथ्या-मोह इस जड़ देह को पर मान लो॥**

हे जीव ! यद्यपि यह आत्मा अशरीरी है, तथापि तुम इसे स्वशरीर-प्रमाण भी मानो । तथा यह भी अच्छी तरह जानो कि शरीर तो जड़ और मूर्तिक है, परन्तु आत्मा जड़ और मूर्तिक नहीं है, अतः तुम अपने मिथ्या-मोह का त्याग करो और शरीर-जैसा स्वयं को मत मानो ।

**अप्पइं अप्पु मुणंतयहं, किं णेहा फलु होइ
केवल-णाणु वि परिणवइ, सासय-सुक्खु लहेइ ॥६२॥**

**अपनत्व आत्म में रहे तो कौन-सा फल ना मिले?
बस होय केवलज्ञान एवं अखय आनंद परिणमे॥**

अहो, आत्मा से आत्मा को जानने पर यहाँ कौन-सा फल नहीं मिलता? केवलज्ञान तक हो जाता है और जीव को शाश्वत सुख की भी प्राप्ति हो जाती है ।

**जे परभाव चएवि मुणि, अप्पा अप्प मुणंति
केवल-णाण-सरुव लइ, ते संसारु मुचंति ॥६३॥**

**परभाव को परित्याग जो अपनत्व आत्म में करें
वे लहें केवलज्ञान अर संसार-सागर परिहरें॥**

जो मुनि समस्त परभावों का त्याग करके आत्मा से आत्मा को पहिचानते हैं, वे केवलज्ञान पाकर संसार से मुक्त हो जाते हैं ।

**धण्णा ते भयवंतं बुह, जे परभाव चयंति
लोयालोय-पयासयरु, अप्पा विमल मुणंति ॥६४॥**

**हैं धन्य वे भगवन्त बुध परभाव जो परित्यागते
जो लोक और अलोक ज्ञायक आत्मा को जानते॥**

अहो ! धन्य हैं वे भगवन्त ज्ञानी पुरुष जो सर्व परभावों का त्याग कर देते हैं और लोकालोक-प्रकाशक निर्मल आत्मा की श्रद्धा करते हैं ।

**सागारु वि णागारु कु वि, जो अप्पाणि वसेइ
सो लहु पावइ सिद्धि-सुहु, जिणवरु एम भणेइ ॥६५॥**

**सागार या अनगार हो पर आत्मा में वास हो
जिनवर कहें अतिशीघ्र ही वह परमसुख को प्राप्त हो॥**

सागार (गृहस्थ) हो या अनगार (मुनि) - जो कोई भी आत्मा में निवास करता है, वही शीघ्र सिद्धि-सुख को प्राप्त करता है - ऐसा जिनवर कहते हैं ।

**विरला जाणहिं तत्तु बुह, विरला णिसुणहिं तत्तु
विरला झायहिं तत्तु जिय, विरला धारहिं तत्तु ॥६६॥**

**विरले पुरुष ही जानते निज तत्त्व को विरले सुनें
विरले करें निज ध्यान अर विरले पुरुष धारण करें॥**

अहो ! कोई विरला ज्ञानी ही तत्त्व को सुनता है, विरला ज्ञानी ही तत्त्व को जानता है, विरला ज्ञानी ही तत्त्व का ध्यान करता है और विरला ज्ञानी ही तत्त्व को अपने हृदय में धारण करता है ।

**इहु परियण ण हु महुतणउ, इहु सुहु-दुक्खहँ हेउ
इम चिंतंतहँ किं करइ, लहु संसारहँ छेउ ॥६७॥**

**‘सुख-दुःख के हैं हेतु परिजन किन्तु वे परमार्थ से
मेरे नहीं’ - यह सोचने से मुक्त हों भवभार से॥**

जो जीव ऐसा चिन्तन करते हैं कि ये परिजन मेरे नहीं हैं, अपितु ये तो क्षणिक सुख-दुःख के हेतु हैं, वे शीघ्र ही संसार का अन्त कर देते हैं ।

इंद्र फणिंद्र णरिंद्र य वि, जीवहँ सरणु ण होंति
असरणु जाणिवि मुणि-धवल, अप्पा अप्प मुणंति ॥६८॥

नागेन्द्र इन्द्र नरेन्द्र भी ना आत्मा को शरण दें
यह जानकर हि मुनीन्द्रजन निज आत्मा शरणा गहँ ॥

इन्द्र, फणीन्द्र और नरेन्द्र भी जीवों को शरण नहीं हैं; अतः उन सब को अशरण जानकर उत्तम मुनिराज तो एक आत्मा से ही आत्मा को जानते हैं ।

इक्क उपज्जइ मरइ कु वि, दुहु सुहु भुंजइ इक्कु
णरयहँ जाइ वि इक्क जिउ, तह णिव्वाणहँ इक्कु ॥६९॥

जन्मे-मरे सुख-दुःख भोगे नरक जावे एकला
अरे! मुक्तीमहल में भी जायेगा जिय एकला ॥

जीव अकेला ही पैदा होता है और अकेला ही मरता है, अकेला ही सुख भोगता है और अकेला ही दुःख भोगता है, अकेला ही नरक में जाता है और अकेला ही निर्वाण में जाता है ।

एक्कुलउ जइ जाइसिहि, तो परभाव चएहि
अप्पा झायहि णाणमउ, लहु सिव-सुख लहेहि ॥७०॥

यदि एकला है जीव तो परभाव सब परित्याग कर
ध्या ज्ञानमय निज आत्मा अर शीघ्र शिवसुख प्राप्त कर ॥

हे भाई ! इसप्रकार यदि सर्वत्र तू अकेला ही जाता है और अकेला ही जाएगा । तो समस्त परभावों का त्याग कर दे और एक ज्ञानमय आत्मा का ही ध्यान कर, ताकि तुझे शीघ्र ही मोक्ष-सुख प्राप्त हो ।

जो पाउ वि सो पाउ मुणि, सब्बु इ को वि मुणेहि
जो पुण्णु वि पाउ वि भणइ, सो बुह को वि हवेइ ॥७१॥

हर पाप को सारा जगत ही बोलता - यह पाप है
पर कोई विरला बुध कहे कि पुण्य भी तो पाप है ॥

अहो ! जो पाप है उसे तो सभी पाप मानते हैं, परन्तु जो पुण्य को भी पाप कहता है वह कोई विरला ज्ञानी ही होता है ।

**जह लोहम्मिय णियउ बुह, तह सुण्णम्मिय जाणि
जे सुहु असुह परिच्चयहिँ, ते वि हवन्ति हु णाणि ॥७२॥**

लोह और सुवर्ण की बेड़ी में अन्तर है नहीं

शुभ-अशुभ छोड़ें ज्ञानिजन दोनों में अन्तर है नहीं ॥

हे ज्ञानी ! जैसी लोहे की बेड़ी होती है, वैसी ही सोने की बेड़ी होती है; अतः वास्तव में ज्ञानी तो वे ही हैं जो शुभ और अशुभ दोनों का त्याग कर देते हैं ।

**जइया मणु णिग्गंथु जिय, तइया तुहुँ णिग्गंथु
जइया तुहुँ णिग्गंथु जिय, तो लब्भइ सिवपंथु ॥७३॥**

हो जाय जब निर्ग्रन्थ मन निर्ग्रन्थ तब ही तू बने

निर्ग्रन्थ जब हो जाय तू तब मुक्ति का मारग मिले ॥

हे जीव ! जब तेरा मन निर्ग्रन्थ होगा, तभी तू सच्चा निर्ग्रन्थ होगा । और जब तू ऐसा सच्चा निर्ग्रन्थ होगा, तभी मोक्षमार्ग को प्राप्त कर सकेगा ।

**जं वडज्झहँ बीउ फुडु, बीयहँ वडु वि हु जाणु
तं देहहँ देउ वि मुणहि, जो तइलोय-पहाणु ॥७४॥**

जिस भाँति बड़ में बीज है उस भाँति बड़ भी बीज में

बस इस तरह त्रैलोक्य जिन आत्म बसे इस देह में ॥

जिसप्रकार जैसे वट में बीज होता है वैसे ही बीज में वट भी स्पष्ट जात होता है, उसीप्रकार इस देह में भी इस त्रिलोक-प्रधान देव की श्रद्धा करो ।

**जो जिण सो हउँ सो जि हउँ, एहउ भाउ णिभंतु
मोक्खहँ कारण जोइया, अण्णु ण तंतु ण मंतु ॥७५॥**

जिनदेव जो मैं भी वही इस भाँति मन निर्भ्रान्त हो

हैं यही शिवमग योगिजन ! ना मंत्र एवं तंत्र है ॥

हे योगी ! जो जिन है वही मैं हूँ और जो मैं हूँ वही जिन है - ऐसी निःसंदेह भावना करो; क्योंकि यही एक मोक्ष का कारण है, अन्य कोई तन्त्र-मन्त्र आदि मोक्ष का कारण नहीं है ।

**बे ते चउ पंच वि णवह, सत्तहँ छह पंचाहँ
चउगुण-सहियउ सो मुणह, एयइँ लक्खण जाहँ ॥७६॥**

दो तीन चउ अर पाँच नव अर सात छह अर पाँच फिर

अर चार गुण जिसमें बसेँ उस आत्मा को जानिए ॥

हे योगी ! दो, तीन, चार, पाँच, नौ, सात, छह, पाँच और चार गुण, इनको आत्मा के लक्षण जानो ।

**बे छंडिवि बे-गुण-सहिउ, जो अप्पाणि वसेइ
जिणु सामिउ एमइँ भणइ, लहु णिव्वाणु लहेइ ॥७७॥**

दो छोड़कर दो गुण सहित परमात्मा में जो बसे

शिवपद लहें वे शीघ्र ही - इस भाँति सब जिनवर कहें ॥

जो जीव दो दोषों को छोड़कर और दो गुणों से सहित होकर आत्मा में निवास करता है, वह शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त करता है, ऐसा जिन स्वामी कहते हैं ।

**तिहिँ रहियउ तिहिँ गुण-सहिउ, जो अप्पाणि वसेइ
सो सासय-सुइ-भायणु वि, जिणवरु एम भणेइ ॥७८॥**

तज तीन त्रयगुण सहित निज परमात्मा में जो बसे

शिवपद लहें वे शीघ्र ही - इस भाँति सब जिनवर कहें ॥

जो जीव तीन दोषों से रहित होकर और तीन गुणों से सहित होकर आत्मा में निवास करता है, वह शाश्वत सुख का पात्र होता है, ऐसा जिनवर कहते हैं ।

**चउ-कसाय-सण्णा-रहिउ, चउ-गुण-सहियउ वुत्तु
सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ, जिम परु होहि पवित्तु ॥७९॥**

जो रहित चार कषाय संज्ञा चार गुण से सहित हो

तुम उसे जानो आत्मा तो परमपावन हो सको ॥

हे जीव ! जो चार कषायों व चार संज्ञाओं से रहित है और चार गुणों से सहित हैं, उस आत्मा की श्रद्धा कर, ताकि तू परम-पवित्र हो सके ।

**बे-पंचहँ रहियउ मुणहि, बे-पंचहँ संजुतु
बे-पंचहँ जो गुणसहिउ, सो अप्पा णिरु वुत्तु ॥८०॥**

जो दश रहित दश सहित एवं दश गुणों से सहित हो
तुम उसे जानो आत्मा अर उसी में नित रत रहो ॥

हे जीव ! जो दस से रहित है, दस से सहित है और दस गुणों से भी सहित है, उसे ही निश्चय से आत्मा कहा गया है, तुम उसकी श्रद्धा करो ।

**अप्पा दंसणु णाणु मुणि, अप्पा चरणु वियाणि
अप्पा संजमु सील तउ, अप्पा पच्चक्खाणि ॥८१॥**

निज आत्मा है ज्ञान दर्शन चरण भी निज आत्मा
तप शील प्रत्याख्यान संयम भी कहे निज आत्मा ॥

आत्मा ही दर्शन है, आत्मा ही ज्ञान है, आत्मा ही चारित्र है, आत्मा ही संयम है, आत्मा ही शील है, आत्मा ही तप है और आत्मा ही प्रत्याख्यान भी है, इसे अच्छी तरह जानो ।

**जो परियाणइ अप्प परु, सो परु चयइ णिभंतु
सो सण्णासु मुणेहि तहुँ, केवल-णाणिं उत्तु ॥८२॥**

जो जान लेता स्व-पर को निर्भान्त हो वह पर तजे
जिन-केवली ने यह कहा कि बस यही संन्यास है ॥

जो जीव स्व और पर को अच्छी तरह जान लेता है, वह निःसन्देह पर का त्याग कर देता है । बस इसे ही संन्यास समझो, ऐसा केवलज्ञानियों ने कहा है ।

**रयणत्तय-संजुत्त जिउ, उत्तिमु तित्थु पवित्तु
मोक्खहँ कारण जोइया, अण्णु ण तंतु ण मंतु ॥८३॥**

रतनत्रय से युक्त जो वह आत्मा ही तीर्थ है
है मोक्ष का कारण वही ना मंत्र है ना तंत्र है ॥

हे योगी ! रत्नत्रय से संयुक्त जीव ही उत्तम पवित्र तीर्थ है और वही मोक्ष का कारण है, अन्य कोई मंत्र-तंत्र आदि मोक्ष का कारण नहीं है ।

**दंसणु जं पिच्छियइ बुह, अप्पा विमल महंतु
पुणु पुणु अप्पा भावियए, सो चारित्त पवित्तु ॥८४॥**

निज देखना दर्शन तथा निज जानना ही ज्ञान है
जो हो सतत वह आत्मा की भावना चारित्र है ॥

जो निर्मल आत्मा को देखा जाता है वही दर्शन है, जो निर्मल आत्मा को जाना जाता है वही श्रेष्ठ ज्ञान है और जो निर्मल आत्मा की पुनः पुनः भावना की जाती है वही पवित्र चारित्र है ।

**जहिँ अप्पा तहिँ सयल-गुण, केवलि एम भणंति
तिहिँ कारणँ जोइ फुडु, अप्पा विमलु मुणंति ॥८५॥**

जिन-केवली ऐसा कहें - 'तहँ सकल गुण जहँ आत्मा'
बस इसलिए ही योगीजन ध्याते सदा ही आत्मा ॥

जहाँ आत्मा है, वहीं सारे गुण हैं, ऐसा केवलज्ञानी कहते हैं । यही कारण है कि योगीजन सदा एक निर्मल आत्मा को ही जानते रहते हैं ।

**एक्कलउ इंदिय-रहियउ, मण-वय-काय-ति-सुद्धि
अप्पा अप्पु मुणेहि तुहुँ, लहु पावहि सिव-सिद्धि ॥८६॥**

तू एकला इन्द्रिय रहित मन वचन तन से शुद्ध हो
निज आत्मा को जान ले तो शीघ्र ही शिवसिद्धि हो ॥

हे भाई ! यदि तू मुक्त होना चाहता है तो अपने आपको इन्द्रिय रहित, मन, वचन और काय से शुद्ध होता हुआ अकेला जान ।

**जइ बद्धउ मुक्कउ मुणहि, तो बंधियहि णिभंतु
सहज-सरुवइ जइ रमहि, तो पायहि सिव संतु ॥८७॥**

यदि बद्ध और अबद्ध माने बँधेगा निर्भान्त ही
जो रमेगा सहजात्म में तो पायेगा शिव शान्ति ही ॥

हे भाई ! यदि तू आत्मा को बद्ध या मुक्त मानेगा तो निःसन्देह बँधेगा और यदि तू सहज-स्वरूप में रमण करेगा तो मोक्षरूप शान्त अवस्था को प्राप्त करेगा ।

**सम्माइट्ठी-जीवडहँ, दुग्गइ-गमणु ण होइ
जइ जाइ वि तो दोसु णवि, पुव्वक्किउ खवणेइ ॥८८॥**

जो जीव सम्यग्दृष्टि दुर्गति-गमन ना कबहूँ करें
यदि करें भी ना दोष पूरब करम को ही क्षय करें ॥

सम्यग्दृष्टि जीव का दुर्गति में गमन नहीं होता । यदि कदाचित् होता भी है तो कोई दोष नहीं है, क्योंकि उससे वह पूर्वकृत कर्मों का क्षय ही करता है ।

**अप्प-सरूवइँ जो रमइ, छंडिवि सहु ववहारु
सो सम्माइट्ठी हवइ, लहु पावइ भवपारु ॥८९॥**

सब छोड़कर व्यवहार नित निज आत्मा में जो रमें
वे जीव सम्यग्दृष्टि तुरतहिं शिवरमा में जा रमें ॥

जो जीव सर्व व्यवहार को छोड़कर आत्म-स्वरूप में रमण करता है, वह सम्यग्दृष्टि है और वह शीघ्र ही संसार से पार हो जाता है ।

**जो सम्मत्त-पहाण बुहु, सो तइलोय-पहाणु
केवल-णाण वि लहु लहइ, सासय-सुख-णिहाणु ॥९०॥**

सम्यक्त्व का प्राधान्य तो त्रैलोक्य में प्राधान्य भी
बुध शीघ्र पावे सदा सुखनिधि और केवलज्ञान भी ॥

जो सम्यक्त्व-प्रधान ज्ञान है, वही तीन लोक में श्रेष्ठ है । उसी से शीघ्र केवलज्ञान एवं शाश्वत सुख के निधान को प्राप्त किया जा सकता है ।

**अजरु अमरु गुण-गण-णिलउ, जहिँ अप्पा थिरु ठाइ
सो कम्मेहिँ ण बंधियउ, संचिय-पुव्व विलाइ ॥९१॥**

जहँ होय थिर गुणगणनिलय जिय अजर अमृत आत्मा
तहँ कर्मबंधन हों नहीं झर जाँय पूरव कर्म भी ॥

जो जीव अजर, अमर और गुणों के भण्डार - ऐसे आत्मा में स्थिर हो जाता है, वह नवीन कर्मों से नहीं बँधता, अपितु उसके पूर्व-संचित कर्मों का भी नाश हो जाता है ।

**जह सलिलेण ण लिप्पियइ, कमलणि-पत्त कया वि
तह कम्मेहिं ण लिप्पियइ, जइ रइ अप्प-सहावि ॥९२॥**

जिसतरह पद्मनि-पत्र जल से लिप्त होता है नहीं
निजभावगत जिय कर्ममल से लिप्त होता है नहीं ॥

जिस तरह कमलिनी-पत्र कभी भी जल से लिप्त नहीं होता, उसी तरह यदि आत्म-स्वभाव में लीनता हो तो जीव कर्मों से लिप्त नहीं हो ।

**जो सम-सुख-णिलीणु बुहु, पुण पुण अप्पु मुणेइ
कम्मक्खउ करि सो वि फुडु, लहु णिव्वाणु लहेइ ॥९३॥**

लीन समसुख जीव बारम्बार ध्याते आत्मा
वे कर्म क्षयकर शीघ्र पावें परमपद परमात्मा ॥

जो समसुख में लीन ज्ञानी पुनः पुनः आत्मा को जानता है, वह शीघ्र ही कर्मों का क्षय करके निर्वाण को प्राप्त करता है ।

**पुरिसायार-पमाणु जिय, अप्पा एहु पवित्तु
जोइज्जइ गुण-गण-णिलउ, णिम्मल-तेय-फुरंतु ॥९४॥**

पुरुष के आकार जिय गुणगणनिलय सम सहित है
यह परमपावन जीव निर्मल तेज से स्फुरित है ॥

हे जीव ! यह आत्मा पुरुषाकार है, पवित्र है, गुणों का भण्डार है और निर्मल तेज से स्फुरायमान दिखाई देता है ।

**जो अप्पा सुद्धु वि मुणइ, असुइ-सरीर-विभिण्णु
सो जाणइ सत्थइ सयल, सासय-सुक्खहँ लीणु ॥९५॥**

इस अशुचि-तन से भिन्न आत्मदेव को जो जानता
नित्य सुख में लीन बुध वह सकल जिनश्रुत जानता ॥

जो आत्मा को शुद्ध एवं अशुचि शरीर से अत्यन्त भिन्न मानता है, वही सारे शास्त्रों को जानता है और वही शाश्वत सुख में लीन होता है ।

**जो णवि जाणइ अप्पु परु, णवि परभाउ चण्ड
सो जाणउ सत्थइँ सयल, ण हु सिवसुक्खु लहेइ ॥९६॥**

जो स्व-पर को नहीं जानता छोड़े नहीं परभाव को
वह जानकर भी सकल श्रुत शिवसौख्य को ना प्राप्त हो ॥

जो जीव स्व और पर को नहीं जानता है और परभावों का त्याग भी नहीं करता है, वह भले ही सर्वशास्त्रों को जानता हो, पर मोक्ष-सुख को प्राप्त नहीं करता ।

**वज्जिय सयल-वियप्पइँ परम-समाहि लहंति
जं विंदहिं साणंदु क वि सो सिव-सुक्ख भणंति ॥९७॥**

सब विकल्पों का वमन कर जम जाय परम समाधि में
तब जो अतीन्द्रिय सुख मिले शिवसुख उसे जिनवर कहें ॥

जीव जब समस्त विकल्पों से रहित होकर परम-समाधि को प्राप्त करते हैं, उस समय उनको जिस आनन्द का अनुभव होता है, उसे मोक्ष-सुख कहते हैं ।

**जो पिंडत्थु पयत्थु बुह, रूवत्थु वि जिण-उत्तु
रूवातीतु मुणेहि लहु, जिम परु होहि पवित्तु ॥९८॥**

पिण्डस्थ और पदस्थ अरूपस्थ रूपातीत जो
शुभ ध्यान जिनवर ने कहे जानो कि परमपवित्र हो ॥

हे ज्ञानी ! जिनेन्द्र द्वारा कथित पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ध्यानों को भलीप्रकार समझो, ताकि तुम शीघ्र ही परम पवित्र हो जाओ ।

**सव्वे जीवा णाणमया, जो सम-भाव मुणेइ
सो सामाइउ जाणि फुडु, जिणवर एम भणेइ ॥९९॥**

‘जीव हैं सब ज्ञानमय’ इस रूप जो समभाव हो
है वही सामायिक कहें जिनदेव इसमें शक न हो ॥

जिनवर देव कहते हैं कि जब यह जीव समभाव के द्वारा ऐसा जानता है कि सब जीव ज्ञानमय हैं, तब उसके सामायिक होता है, ऐसा स्पष्ट जानो ।

**राय-रोस ये परिहरिवि, जो समभाउ मुणेइ
सो सामाइउ जाणि फुडु, केवलि एम भणेइ ॥१००॥**

जो राग एवं द्वेष के परिहार से समभाव हो
है वही सामायिक कहें जिनदेव इसमें शक न हो ॥

केवलज्ञानी कहते हैं कि राग और द्वेष दोनों को छोड़कर जो समभाव धारण किया जाता है, वही सामायिक है, ऐसा स्पष्ट जानो ।

**हिंसादिउ-परिहारु करि, जो अप्पा हु ठवेइ
सो बियऊ चारित्तु मुणि, जो पंचम-गइ णेइ ॥१०१॥**

हिंसादि के परिहार से जो आत्म-स्थिरता बढ़े
यह दूसरा चारित्र है जो मुक्ति का कारण कहा ॥

जो जीव हिंसादि का त्याग करके आत्मा को आत्मा में स्थापित करता है, उसके छेदोपस्थापना नामक दूसरा चारित्र होता है, जो जीव को पंचम गति में ले जाता है ।

**मिच्छादिउ जो परिहरणु, सम्मददंसण-सुद्धि
सो परिहार-विसुद्धि मुणि, लहु पावहि सिव-सिद्धि ॥१०२॥**

जो बढ़े दर्शनशुद्धि मिथ्यात्वादि के परिहार से
परिहारशुद्धी चरित जानो सिद्धि के उपहार से ॥

मिथ्यात्वादिक के परिहार (त्याग) से जो सम्यग्दर्शन की शुद्धि होती है, उसे परिहारविशुद्धि नामक तीसरा चारित्र जानो । इससे जीव शीघ्र मोक्षसिद्धि को प्राप्त करता है ।

**सुहुँ लोहँ जो विलउ, जो सुहु वि परिणामु
सो सुहु वि चारित्त मुणि, सो सासय-सुह-धामु ॥१०३॥**

लोभ सूक्ष्म जब गले तब सूक्ष्म सुध-उपयोग हो
है सूक्ष्मसाम्पराय जिसमें सदा सुख का भोग हो ॥

सूक्ष्म लोभ के नष्ट हो जाने पर जो सूक्ष्म परिणाम होता है उसे सूक्ष्मसाम्पराय नामक चारित्र जानो वह अविनाशी सुख का धाम है ।

**अरहंतु वि सो सिद्धु फुडु, सो आयरिउ वियाणि
सो उवझायउ सो जि मुणि, णिच्छइँ अप्पा जाणि ॥१०४॥**

**अरहंत सिद्धाचार्य पाठक साधु हैं परमेष्ठी पण
सब आत्मा ही हैं श्री जिनदेव का निश्चय कथन ॥**

निश्चय से आत्मा ही अरिहंत है, आत्मा ही सिद्ध है, आत्मा ही आचार्य है, आत्मा ही उपाध्याय है और आत्मा ही मुनि है, ऐसा जानो ।

**सो सिउ संकरु विण्हु सो, सो रुद्धु वि सो बुद्धु
सो जिणु ईसरु बंभु सो, सो अणंतु सो सिद्धु ॥१०५॥**

**वह आत्मा ही विष्णु है जिन रुद्र शिव शंकर वही
बुद्ध ब्रह्मा सिद्ध ईश्वर है वही भगवन्त भी ॥**

आत्मा ही शिव है, आत्मा ही शंकर है, आत्मा ही विष्णु है, आत्मा ही रुद्र है, आत्मा ही बुद्ध है, आत्मा ही जिन है, आत्मा ही ब्रह्मा है, आत्मा ही अनन्त है और आत्मा ही सिद्ध भी है ।

**एव हि लक्खण-लक्खियउ, जो परु णिक्कलु देउ
देहहँ मज्झहिँ सो वसइ, तासु ण विज्जइ भेउ ॥१०६॥**

**इन लक्षणों से विशद लक्षित देव जो निर्देह है
कोई भी अन्तर है नहीं जो देह-देवल में रहे ॥**

उपर्युक्त विविध नामों से लक्षित जो परम निष्कल (शरीर रहित) देव है, वह इस शरीर में ही रहता है । उसमें और इसमें कोई अन्तर नहीं है ।

**जे सिद्धा जे सिज्झिहिँ, जे सिज्झिहिँ जिण-उत्तु
अप्पा-दंसणिँ ते वि फुडु, एहउ जाणि णिभंतु ॥१०७॥**

**जो होंयगे या हो रहे या सिद्ध अबतक जो हुए
यह बात है निर्भान्त वे सब आत्मदर्शन से हुए ॥**

जितने भी जीव भूतकाल में सिद्ध हुए हैं, भविष्य में होंगे और वर्तमान में हो रहे हैं, वे सब आत्म-दर्शन से ही हो रहे हैं - ऐसा निःसन्देह जानो ।

संसारहँ भय-भीयएँ, जोगिचंद-मुणिएण अप्पा-संबोहण कया, दोहा इक्क-मणेण ॥१०८॥

भवदुखों से भयभीत योगीचन्द्र मुनिवर देव ने
ये एकमन से रचे दोहे स्वयं को संबोधने ॥

संसार से भयभीत योगीन्दु मुनि ने आत्म-सम्बोधन के लिए एकाग्र मन से इन दोहों की रचना की है ।